पं. श्यामा प्रसाद मुकर्जी का गुरुकुल विश्वविद्यालय में एक ऐतिहासिक भाषण

गुरुकुल विश्वविद्यालय के सदस्यों,

इस वार्षिक दीक्षांत समारोह को संबोधित करने के लिए आमंत्रित कर आपने मुझे जो सम्मान दिया है, उसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ। इस महान विश्वविद्यालय में मैं पहली बार आया हूँ। इसे राष्ट्रीय संपत्ति मानते हुए हमें गर्व होता है। इसके प्रसिद्ध एवं सम्माननीय संस्थापक और उनका स्थान लेने वाले लोग, जिनमें न केवल शिक्षा के नए आदर्शों को विकसित करने का साहस तथा दूरदृष्टि थी, बल्कि अपने महत्वपूर्ण और पवित्र लक्ष्यों को समर्पित संस्थानों की स्थापना और विकास कर उसे व्यवहार में उतारने की क्षमता और दृढ़ता थी, उन्हें मैं नमन करता हूँ।

आज हम इतिहास के दोराहे पर खड़े हैं। हमारी प्रिय मातृभूमि स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए संघर्षरत है, जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। शिक्षा के माध्यम से भारत की स्वाधीनता की लड़ाई जीती जाएगी।

राजनीतिक पुनर्निर्माण का यह वृहद कार्य प्रशिक्षित और अनुशासित भारतीयों के संगठित प्रयासों से ही संभव है। भारत के महान और स्वर्णिम इतिहास, उसकी शक्ति और दुर्बलता से परिचित ये लोग देश के सामने ऐसे कार्यों की योजना रख सकते हैं, जो भारतीय सभ्यता की मूलभूत परंपराओं से मेल रखते हुए आधुनिक विश्व की बदलती परिस्थितियों के भी अनुकूल होंगे।

अगर कोई निष्पक्ष इतिहासकार ब्रिटिश भारत में शिक्षा के इतिहास की खोज करे तो इस क्षेत्र में सत्ताधारी वर्ग का प्रयास शायद ही प्रशंसनीय मिले। हम इस देश के बच्चों की शिक्षा के प्रति समर्पण और उत्साह की कमी के कारण नहीं पिछड़े हैं, बल्कि हमारे शासकों की उस भयंकर भूल के कारण पिछड़े हैं जो उन्होंने एक शताब्दी से अधिक पहले शिक्षा नीति तैयार करते समय की थी। यह नीति बैंटिक और मैकाले के समय तैयार की गई थी और इसमें भारतीयों के कल्याण का ध्यान नहीं रखा गया था, बल्कि सत्ताधारी वर्ग के हितों के संवर्धन का ध्यान रखा गया था। किसी भी देश की शिक्षा का उचित विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक वह वहाँ के राष्ट्रीय जीवन से प्रेरित न हो। अपनी जड़ों से कटी हुई और विदेशी ताकत द्वारा थोपी गई शिक्षा अंततः असफल हो जाती है।

सरकारी अनुदान को केवल यूरोपीय शिक्षा के लिए इस्तेमाल करने का निर्णय कर बैंटिक ने भारतीयों की

संस्कृति नष्ट करने के युग की शुरुआत की। लोगों के बीच ज्ञान के प्रसार के खतरनाक परिणाम की संभावना से आशंकित मैकाले और उसके सहकर्मियों ने भारतीयों के एक चुने हुए वर्ग का पक्ष लेने का निर्णय लिया। इसका उद्देश्य उन्हें स्वावलंबी और देशभक्त भारतीय बनने में मदद करना नहीं था, बल्कि जैसा कि मैकाले ने खुद कहा था – एक ऐसा वर्ग बनाना था जो खून और रंग से तो भारतीय हो लेकिन रूचि, मत, नैतिक मूल्यों और बुद्धि से अंग्रेज हो। उन दिनों के रिकॉर्ड से पता चलता है कि इन शासकों को भारतीयों के अतीत की गौरवशाली सभ्यता का ज्ञान नहीं था। उन्होंने वास्तव में पश्चिमी संस्कृति के तथाकथित गुणों पर अत्यधिक जोर दिया और हर उस चीज के प्रति खुले रूप से तिरस्कार की भावना रखी जो भारतीय थी। हम इस बात को गलत नहीं मान रहे कि पश्चिमी शिक्षा के द्वार भारतीयों के लिए खोले गए बल्कि इस बात को गलत मान रहे हैं कि यह शिक्षा हमारी सांस्कृतिक विरासत की कीमत पर भारत लाई गई। पश्चिमी शिक्षा और हमारी शिक्षा पद्धति के बीच उचित सामंजस्य रखने की जरूरत थी, न कि हमारी शिक्षा पद्धति की उपेक्षा करनी थी।

भारत के इतिहास के विभिन्न खंडों में इस बात के अनेक दृष्टांत हैं कि जिस काल में यूरोपीय देश अज्ञानता और क्रूरता में डूबे हुए थे, हमारे महान संत, महात्माओं ने राजकीय समर्थन से ऐसी बौद्धिक प्रधानता हासिल की थी जो किसी भी सभ्य राष्ट्र के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकती थी। हमारे देश में एक ऐसे समाज का विकास हुआ था जिसने न केवल स्कूली शिक्षा, दर्शन और धर्म को ही बढ़ावा दिया, बल्कि कला, स्थापत्य कला, चिकित्सा विज्ञान, खगोल विज्ञान और इंजीनियरिंग को भी बढ़ावा दिया। किसी भी देश की शिक्षा पद्धति वहाँ की परंपराओं के अनुरूप विचारों और सोच से पोषित होनी चाहिए। भारत में पश्चिमी शिक्षा के बने रहने के पीछे मुख्य कारण सरकारी नौकरी का आकर्षण था। ज्ञान के प्रसार के लिए नहीं, बल्कि नौकरशाही व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए जरूरी रोजगार के अवसर खोलने के वास्ते शिक्षा को बढ़ावा दिया गया।

मेरी यहाँ भारत में शिक्षा व्यवस्था के विकास का विस्तार से पता लगाने की कोई इच्छा नहीं है।

मैकाले की भविष्यवाणी परिणामों को देखते हुए आंशिक रूप से झूठी साबित हुई। शिक्षित भारतीयों के राष्ट्रीय अंत:करण को दबाया नहीं जा सका और विदेशी शासन के अंधभक्त बनना तो दूर, वे खुद क्रांति के जनक बन गए। जनसामान्य की शिक्षा की इस तरह उपेक्षा हुई जिसका किसी सभ्य प्रशासन के इतिहास में उदाहरण नहीं मिलता। शिक्षा पद्धति भारत की वास्तविक जरूरतों को पूरा करने में नाकाम रही और शीघ्र ही इसके दोष देशभक्त भारतीयों के सामने उजागर हो गए। इसमें कोई संदेह नहीं कि लोगों की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुरूप शिक्षा पद्धति में समय-समय पर दूरगामी बदलाव करने के प्रयास किए गए।

उच्च शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में, कला और विज्ञान में देखा गया है कि भारतीय विद्वानों की मूल सोच को दबाया नहीं जा सकता है और वे उतने ही क्षमतावान हैं, जितने कि विदेशी। चिंतन के कुछ क्षेत्रों में आंशिक सफलता मिली है, लेकिन असंतोष की भावना भी स्पष्ट है, जिससे पूरी व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव की जरूरत दिख रही है।

शिक्षा की समस्या स्वाभिमानी भारतीयों को स्वीकार्य तरीके से तब तक हल नहीं की जा सकती जब तक

इसे विदेशी अधीनता से मुक्त और राष्ट्रीय इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार के हाथों में न छोड़ दिया जाए। वास्तव में हम दुष्चक्र में उलझे हुए हैं। स्पष्ट रूप से रेखांकित और निर्देशित शिक्षा के बिना हम आसानी से आजादी हासिल नहीं कर सकते। आजाद हुए बिना और अपने भाग्य का स्वयं निर्माता बने बिना हम अपनी इच्छा और जरूरतों के अनुरूप अपनी शिक्षा नीति को नया स्वरूप नहीं दे सकते। हालाँकि जब तक मौजूदा स्थिति कायम है, यह स्पष्ट है कि हमें मौजूद तंत्र का सर्वोत्तम उपयोग करना है और निरंतर प्रयासों तथा आंदोलन से परिवर्तन और सुधार करने हैं जिससे हम अपने लक्ष्य के जितना संभव हो, निकट पहुँच सकें। उच्चतम स्तर पर राष्ट्रभाषा को शिक्षा और निर्देशों के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना पहली जरूरत है, जिसे पूरा किया जाना अभी बाकी है। आपने अपनी गतिविधियों के विकास के लिए यह सही रास्ता चुना है।

हर प्रांत की अपनी एक प्रमुख भाषा है और इसे वहाँ की शिक्षा के क्षेत्र में अपनाया जाना चाहिए। अगर वहाँ ऐसी दूसरी भाषा भी है जिसे जानने वाले पर्याप्त संख्या में हैं तो उसे भी उचित परिस्थितियों में मान्यता दी जा सकती है, हालाँकि एक ही प्रांत में भाषाओं की विविधता से उलझनें पैदा हो सकती हैं। प्रशिक्षित विद्वानों की देखरेख में प्रांत में एक ब्यूरो का गठन किया जाना चाहिए जो सरकार और विश्वविद्यालयों के निकट सहयोग से काम करे। यह ब्यूरो प्रांतीय भाषा में हर विषय की पाठ्य-पुस्तकें तैयार करे। साधारण उद्देश्यों के लिए प्राथमिक स्कूल के बाद कामचलाऊ अंग्रेजी का ज्ञान पर्याप्त है, केवल उन मामलों को छोड़कर जिनमें विद्वानों की सीमित संख्या अंग्रेजी भाषा और साहित्य विषय में ज्ञानार्जन करना चाहती है।

इसी तरह विभिन्न विषयों के अध्ययन में ऐसे बदलाव किए जाने चाहिए जो देश की स्थितियों के अनुकूल हों। इतिहास, अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान, जैसे विषयों को भारतीय संदर्भ में पढ़ाया जाना चाहिए। वैसे विज्ञान जिसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं है, उनकी शब्दावली वही होनी चाहिए जो विश्व के दूसरे हिस्सों में प्रचलित है, क्योंकि केवल इसी तरह हम विश्व की प्रगति के संपर्क में रह पाएँगे और इस तरह वे श्रमिक अपने कार्यक्षेत्र से इतर भी साथी श्रमिकों के साथ जुड़े रह सकेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सुसज्जित पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं, विचार गोष्ठियों और संग्रहालयों पर खर्च करना है, लेकिन हमें इमारतों और छात्रावासों पर अनावश्यक खर्च कम करना है। भारत जैसे गरीब देश में हमारा उद्देश्य हर संभव तरीके से खर्च कम करना होना चाहिए ताकि बचत का इस्तेमाल शिक्षा के विकास में हो सके। शिक्षा हासिल करने वालों को ऐसा प्रशिक्षित जीवन जीने का अभ्यास होना चाहिए कि उनके लिए यह संभव हो सके कि शिक्षा पूर्ण होने के बाद वे उस वातावरण से बिना किसी बाधा के तालमेल बिठा सकें जिसमें वे पहले रहने के अभ्यस्त थे।

हमारे देश की प्रगति के लिए इससे ज्यादा बड़ी बाधा का कारण कोई और नहीं हो सकता कि तथाकथित शिक्षित भारतीयों के एक अलग वर्ग का निर्माण हो जो कम सुविधासंपन्न अपने उन लाखों देशवासियों के रहन-सहन के तरीकों और विचारों से नितांत अलग हो। शिक्षित वर्ग को इन कम सुविधासंपन्न देशवासियों की सेवा में अपना जीवन अर्पित करना चाहिए।

शिक्षा को लोगों के सामाजिक और आर्थिक परिवेश से अलग नहीं किया जा सकता। शिक्षा प्रदान करने वाले सभी विद्यार्थियों को रोजगार की गारंटी नहीं दे सकते, लेकिन व्यवस्था इस तरह बनाई जानी

चाहिए कि विद्यार्थियों को मिलने वाला प्रशिक्षण अस्तित्व के लिए संघर्ष में मददगार हो, न कि बाधा उत्पन्न करे। इस क्षेत्र में देश की सरकार इसे अपना सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य मानेगी कि शैक्षिक संस्थानों की गतिविधियों के साथ व्यापार, वाणिज्य, कृषि और उद्योग संबंधी गतिविधियों का प्रभावशाली ढंग से समन्वय किया जाए। इस उद्देश्य से शिक्षा को बहुपक्षीय होना चाहिए और विभिन्न प्रकार की संस्थाओं का विकास किया जाना चाहिए, ताकि देश की आर्थिक और औद्योगिक प्रगति के अनुकूल लोगों को विभिन्न गतिविधियों के लिए प्रशिक्षित किया जा सके।

अगर ये सभी एजेंसियाँ समग्र रूप से राष्ट्र की सेवा के अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास करेंगी तो इनके हितों में टकराव नहीं होगा।

शिक्षक और छात्र के बीच पिता-पुत्र के समान संबंध होना चाहिए। ऐसा होने पर ही शिक्षा का उचित स्तर बनाए रखा जा सकेगा और इसके उद्देश्य पूरी तरह प्राप्त किए जा सकेंगे। स्वत:स्फूर्त निष्ठा और स्नेह से उत्पन्न आज्ञाकारिता स्थायी होती है ; नियमों और दंड का भय दिखाकर थोपा गया अनुशासन विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण करने में अक्षम रहता है। गुरुकुल-शिक्षक के घर का आपका मूल विचार प्राचीन भारतीय मानसिकता का एक उपहार है और यह भारत के कई हिस्सों में पश्चिमी नकल में बने रिहायशी स्कूलों के बनावटी माहौल में नहीं उतर पाया है।

धर्म की विस्तृत व्याख्या की जा चुकी है। भारतीय गुरुकुल की अवधारणा में शिक्षा को धर्म की मुख्यधारा से अलग नहीं किया जा सकता। भारतीय युवा को अपनी विरासत के विषय में दृढ़ और स्पष्ट होना चाहिए।

प्राचीन ऋषियों के उपदेशों के शाश्वत मूल्यों का अर्थ उसे समझाया जाना चाहिए, उसकी जिज्ञासा को अवरुद्ध करने के लिए नहीं बल्कि उसके आधारभूत मूल्यों के बारे में उसे स्वयं निर्णय करने के लिए।

हमारे समाज में सभ्यता का मतलब है कि हमारी भावनाओं का विकास इस तरह हो कि हम समाज में एक-दूसरे को समझ सकें और उसका सम्मान कर सकें।

यही कारण है कि हमारे सामाजिक जीवन में राजनीतिक चेतना नहीं बल्कि नैतिक चेतना की ज्यादा प्रधानता रही है। अगर आज हम विभाजन और विघटन का सामना कर रहे हैं तो यह कमी उन व्याख्याकारों की वजह से है जो ऐतिहासिक कारणों से हमारे समाज के आधारभूत आदर्श 'सेवा और समानता' की जड़ों पर प्रहार करके समाज के मूलभूत ढाँचे को कमजोर कर रहे हैं।

हमारे युवाओं को अपनी विरासत पर गर्व करना सिखाया जाना चाहिए। केवल इसी तरह से वे प्रगति में बाधक हीनता की भावना और आत्मविश्वास की कमी को दूर कर पाएँगे। हमारा दावा है कि पश्चिम की ओर मुड़ने की बजाय हम अपने तरीके से अपने समाज का आधारभूत रूप से पुनर्निर्माण कर सकते हैं। हमारे जैसे देश में, जहाँ लोग विभिन्न धर्मों और मतों के हैं, हमारी गतिविधियाँ ऐसी होनी चाहिए कि सबके बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास का पूरा अवसर हो, हर व्यक्ति अपने धर्म के प्रति निष्ठावान हो, एक-दूसरे का सहायक और विश्वासी हो और सभी भारत की एकता की स्थायी भावना के प्रति निष्ठा रखें। आज विश्व एक ऐसे संकट का सामना कर रहा है जो मानव सभ्यता के इतिहास में ज्ञात नहीं था।

पश्चिमी सभ्यता विश्व को शांति और स्वतंत्रता देने में नाकाम रही है। भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति के बावजूद यूरोप में शासक वर्ग पर शक्ति, प्रतिष्ठा और आधिपत्य की भावना हावी रही है।

विश्व की भविष्य की खुशहाली उन लोगों की सोच पर निर्भर होगी जिनके हाथों में ताकतवर राष्ट्रों का नियंत्रण होगा। समानता, प्रजातंत्र और स्वतंत्रता के सिद्धांतों के लिए मुँह से वे चाहे जितनी सहानुभूति दिखाएँ, अगर कार्य रूप में वे आक्रमण और कमजोर तथा कम संपन्न राष्ट्रों के शोषण की नीति से संचालित होंगे तो वे कभी बेहतर विश्व की शुरुआत की उम्मीद नहीं कर सकते। दुनिया का भविष्य स्वतंत्र राष्ट्रों के संघ में निहित है, जहाँ प्रत्येक राष्ट्र को अपने जीवन का विकास अपने श्रेष्ठ आदर्शों और परंपराओं के अनुरूप करने का अवसर हो। अगर यह लक्ष्य सबको स्वीकार्य हो तो विश्व के सभी हिस्सों में शिक्षा प्रणाली को ऐसा आकार देना होगा कि उचित अंतरराष्ट्रीय व्यवहार और समझ विकसित हो सके। मनुष्य को अपने साथियों के अच्छे जीवन के लिए सोचना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने मन और शक्ति के स्वस्थ विकास और इनके बेहतर इस्तेमाल का उचित अवसर दिया जाना चाहिए। उसमें सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना और सार्वजनिक कल्याण के लिए अपने और अपने वर्ग के व्यक्तिगत हितों को पीछे रखने की इच्छा होनी चाहिए। उसे स्वतंत्र राय रखने वाला, दूसरों की विशिष्टता का सम्मान करने वाला और विरोधी विचारों के प्रति सहिष्णु होना चाहिए। उसे यह महसूस होना चाहिए कि उसका उत्तरदायित्व केवल अपने देश के नागरिक के रूप में ही नहीं है बल्कि विश्व के नागरिक के रूप में भी है, सबके लिए समान न्याय होना चाहिए, सरकार को आम सद्भावना और समर्थन पर आधारित होना चाहिए, न कि पाश्विक शक्तियों पर। एक अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या जो हमारे सामने है – वह है सबकी जरूरतों और महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप राष्ट्रीय शिक्षा की पुनः योजना बनाना। हमें नहीं पता कि राजनीतिक परिस्थितियाँ कब हमें इस सुधारवादी योजना को साकार करने की अनुमति देंगी, लेकिन युद्ध के बाद पुनर्निर्माण का यह महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए।

हमें अविलंब सबके हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक कुशल तंत्र बनाना चाहिए जो भविष्य के शैक्षिक कार्यक्रम की खोज करे। यह आसान काम नहीं होगा। भाषाओं, परंपराओं, विभिन्न समुदायों की जरूरतों और रोजगार जैसे मुद्दों का बारीकी से निरीक्षण करना होगा। शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट और सही तरीके से परिभाषित किया जाना चाहिए।

संक्षेप में कहें तो हमारा उद्देश्य प्रत्येक भारतीय बच्चे को जहाँ तक संभव हो, पूर्ण बनाना है, ताकि वह अपने समुदाय के साथ एकता का अनुभव कर सके। अतीत की परंपराओं, अपने जीवन और वर्तमान के कार्यों तथा भविष्य के लिए अपनी महत्वाकांक्षाओं और उत्तरदायित्वों को साझा कर सके। भारत जैसे विशाल देश में खास प्रांतों की अनोखी समस्याएँ हो सकती हैं। हमारा उद्देश्य हर बच्चे के मन में भारत की एकता के लिए दृढ़ निष्ठा की भावना विकसित करना होना चाहिए। उनके दैनिक कार्यों को इस तरह व्यवस्थित करना होगा कि वह इस बात के प्रति जागरूक बने कि वह जो कर रहा है, अपने राष्ट्र की प्रगति के लिए कर रहा है और इस तरह व्यापक रूप से मानवता की प्रगति के लिए कर रहा है।

आपका महान संस्थान भारत की शिक्षा संबंधी समस्या के समाधान में महत्वपूर्ण योगदान करेगा। शिक्षा

के क्षेत्र में नियमों के अनुशासन और कठोर प्रारूप को अपनाना वास्तव में इसके लिए घातक होता है। आपने दिखा दिया है कि भारतीय सभ्यता के आधारभूत मूल्यों और वैज्ञानिक युग की वास्तविक जरूरतों के बीच उचित तालमेल से इस देश में शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। आपने बड़ी बाधाओं के बावजूद मानव सभ्यता को अंहकारी और स्वार्थी भौतिकवाद की विनाशकारी शक्तियों से बचाए रखा है।

भारतीय समाज के पुनर्निर्माण में आपको प्रमुख भूमिका निभानी है और आपके अनुभव इस देश की भविष्य की शिक्षा-नीति और प्रशासन को बहुत प्रभावित करेंगे। तमाम विविधताओं के बावजूद भारत विचारों और कार्यों में एक है जो वास्तव में अद्‌भुत है। राजनीतिक रूप से पराधीन होते हुए भी हम अपना सिर ऊँचा रख सके हैं, क्योंकि घुल मिल जाने की स्वाभाविक क्षमता भारतीयों में है। हमारी संस्कृति का लक्ष्य जीवन को पूरी तरह अर्थपूर्ण बनाना है। जीवन का संपूर्ण ज्ञान प्रकृति, मनुष्य और ईश्वर तीनों के मिलन में है। सेवा और प्रेम मनुष्य को पूर्ण बनाते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत की प्रगति उचित और सही है, हिमालय और पवित्र नदी अनंत काल से भारतीय सभ्यता के शानदार इतिहास के साक्षी रहे हैं, इस सभ्यता को कोई विदेशी शक्ति नष्ट नहीं कर सकती। हम अपने गौरवमय अतीत से प्रेरणा लें, वर्तमान की कठिनाइयों का सामना साहस और शक्ति से करें और भविष्य के स्वतंत्र और एकीकृत भारत के पुनर्निर्माण में निर्भीकतापूर्वक अपना विनम्र योगदान दें।

आओ, हम लाखों पीड़ित भारतीयों की आवाज बनें और अपने प्रिय कवि के शब्दों में सत्य और न्याय के रास्ते पर चलने की दृढ़ता व्यक्त करते हुए घोषणा करें कि अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं है।

जहाँ चित्त भय से शून्य हो
जहाँ हम गर्व से माथा ऊँचा करके चल सकें
जहाँ ज्ञान मुक्त हो
जहाँ दिन-रात विशाल वसुधा को खंडों में विभाजित कर
छोटे और छोटे आँगन न बनाए जाते हों।
जहाँ हर वाक्य हृदय की गहराई से निकलता हो
जहाँ हर दिशा में कर्म के अजस्र नदी के स्रोत फूटते हों
और निरंतर अबाधित बहते हों
जहाँ विचारों की सरिता
तुच्छ आचारों की मरुभूमि में न खोती हो
जहाँ पुरुषार्थ सौ-सौ टुकड़ों में बँटा हुआ न हो।
जहाँ सभी कर्म, भावनाएँ, आनंदानुभूतियाँ
तुम्हारे अनुगत हों।
हे पिता, अपने हाथों से निर्दयतापूर्ण प्रहार कर
उसी स्वातंत्र्य स्वर्ग में इस सोते हुए
भारत को जगाओ।

(25 अप्रैल , 1943)

साभार- http://www.hindisamay.com/ से